मध्यप्रदेश का जनजातीय जगत

भील-भिलाला

जिनकी है अलग ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान

❑ वसंत निरगुणे

मध्यप्रदेश को यदि जानना हो तो सबसे पहले हमें आदिवासी संस्कृति को जानना जरूरी है, क्योंकि मध्यप्रदेश का आधे से अधिक हिस्सा आदिम जनजातियों से भरा है, जिनमें गोंड, बैगा, भील, कोरकू, सहरिया और कोल प्रमुख हैं। मध्यप्रदेश में बैगा, अगरिया और सहरिया अत्यंत पिछड़ी जनजातियों में गिनी जाती हैं। ये जनजातियाँ आज के समय में भी अपनी आदिम संस्कृति के साथ जी रही हैं। उन्हें देखकर आश्चर्य भी होता है और भरोसा भी होता है कि ये लोग अपनी आदिमता के साथ आधुनिक समय को भी किस तरह साधे हुए हैं? क्या उन्हें पुरातन रहने में सुख होता है अथवा नये पन को ग्रहण करने में कुछ परेशानी भी होती है। हम प्रदेश की एक बड़ी भील जनजाति के बारे में जानें जो एक प्राचीन जाति होते हुए भी अपनी पहचान बनाने में लगी है।

विन्ध्य सतपुड़ा की ऊँची-नीची उपत्यिकाओं से आवृत्त निमाड़, मालवा और झाबुआ अंचल में बसने वाली भील जनजाति अपनी अलग ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान रखती है। भील-भिलाला देश की तीसरी सबसे बड़ी जनजाति है। प्रदेश में उसका स्थान दूसरे क्रम पर है। ये राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में भी सघनता से निवास करते हैं।

भीलों की मुख्य चार उपशाखाएँ हैं इनमें भील मूल हैं- भिलाला, पटलिया, बारेला और राठिया। ये लोग प्रायः जंगलों में रहना पसंद करते हैं। ये लोग भील-भिलाला के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। सन् 1991 में मध्यप्रदेश में भील-भिलालों की जनसंख्या कुल मिलाकर

भीली युवतियाँ

34,36,743 थी। जिनकी आज जनसंख्या कई अधिक हो गई है।

भील भारत की एक प्राचीन पौराणिक जाति है। आदिकवि बाल्मीकि, जिन्हें ये लोग 'बाल्या भील' के नाम से जानते हैं, साथ ही शबरी और प्रसिद्ध धनुर्धारी एकलव्य को अपना पूर्वज मानने वाली भील जनजाति धनुषबाण से आज भी उतना ही प्यार करती है, जितना कभी पौराणिक काल में रहा होगा। ये एकलव्य की याद में धनुष की प्रत्यंचा पर अभी भी अंगूठा मोड़कर ही बाण चढ़ाते हैं। अपने पूर्वजों के प्रति इससे बड़ी श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है? यह इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

भील द्रविड़ियन परिवार के हैं। द्रविड़ भाषा में 'बील' शब्द का अर्थ तीर या बाण होता है। इसी 'बील' से 'भिल्ल' और भील शब्द बना है। आज भी भील-भिलालों का तीर-धनुष अभिन्न अंग है। तीर-कामठी रखने में भील लोग आज भी गौरव का अनुभव करते हैं। तीर-धनुष भीलों का जातीय प्रतीक बन गया है।

भीलों के निवास धार-झाबुआ की प्राकृतिक बनावट पर निर्भर है, छोटी-छोटी पहाड़ियों के मध्य में भीलों के गाँवों की विरल श्रृंखला बनती है, जिनमें टेकड़ी ही टेकड़ियाँ, छोटी-छोटी घाटियाँ ही घाटियाँ दिखाई देती हैं। पहाड़ियाँ-घाटियाँ भी ऐसी कि जिन पर कोई पेड़ नहीं होते। ऐसा लगता है जैसे किसी ने सभी पहाड़ियों के वस्त्र खींच लिए हैं। ऐसी निर्वस्त्र पहाड़ियों और पगएँडियों की एक कतार खत्म होती है और दूसरी शुरू हो जाती है। कहीं ये कतारें एक दूसरे के साथ-साथ चलती हैं तो कहीं ये गाँव को घेरकर खड़ी हो जाती

हैं तो कहीं एक दूसरी की गलबाहों में बाहें डालकर अठखेलियाँ करती हैं। इन पहाड़ियों के बीच आसमान छूते ताड़ के वृक्ष वातावरण की एकरसता को हाथ हिलाते-हिलाते तोड़ते नजर आते हैं।

झाबुआ में भील-भिलाला, बारेला, पटलिया और राठवाओं की सघनता गहरी है। यहाँ इनका प्रकृति के साथ गहरा रिश्ता है। यहाँ की प्रकृति के खेल भी निराले हैं। दूर-दूर तक फैली खुली पहाड़ियाँ आँखों को बहुत दूर तलक ले जाती हैं। प्रकृति ने यहाँ के चप्पे-चप्पे में एक अनूठे खुलेपन के सौन्दर्य को भर दिया है। देखते ही रहिये अपलक, नजर हटती ही नहीं है। प्रकृति पुत्र भील की अदम्य जिजीविषा और जीवन के प्रति उत्कट लालसा के दर्शन भी हमें भीलों के इसी आदिम जगत में सहज रूप से मिल जाते हैं।

संस्कृति सम्पन्न भील जनजाति को अपनी परम्परा और प्रथाओं से बहुत अधिक लगाव है। चाहे उनका कोई अनुष्ठान हो, सामाजिक कार्य हो, जन्म हो अथवा मृत्यु हो, सबमें उनकी संलग्नता और संपृक्तता बहुत गहरी और आस्थावान है। उनका जीवन जैसे परम्पराओं से भरा हुआ है।

छोटी-छोटी पहाड़ियों की ओट में खड़ी-बिखरी और साँस लेती भील जनजाति की झोपड़ियाँ। नहीं, जिन्हें घर कहना चाहिए जो लकड़ी, बाँस-बल्ली, घास और कवेलुओं तथा मिट्‌टी, ईंट से बने लम्बे-चौड़े हवादार होते हैं। जहाँ खेत, वहीं घर। घर जीवन की समस्त गतिविधियों का केन्द्र, जहाँ भीलों की आदिम और आधुनिक दोनों संस्कृतियाँ साँस लेती हैं।

भील अपने आपको महादेव के वंशज मानते हैं। उनका कहना है- 'एक बार महादेव घने जंगल में भटक गये। वे अपनी व्याधि को दूर करने के लिए जंगल में जड़ी-बूटियाँ ढूँढ़ रहे थे। अचानक महादेव की नजर एक आदिम जाति की नवयुवती पर पड़ी। नजर पड़ते ही भगवान महादेव की व्याधि तो दूर हो गई, लेकिन वे उस सुन्दर कन्या के रूप पर मोहित हो गये, उन्होंने उससे विवाह कर लिया। उससे अनेक सन्तानें पैदा हुईं। इन संतानों में एक बालक बहुत शैतान था, उसने एक दिन भगवान महादेव के नांदिया बैल का वध कर दिया। महादेव ने उसे क्रोधवश जंगल में भेज दिया। कहते हैं- उसी के वंशज भील कहलाये।'

भीलों का मन कई पारम्परिक पर्व-त्यौहारों में रमता है। ये बड़े उत्साह से भगोरिया, गल, गढ़, नवई, चलावणी, जातरा आदि मनाते हैं। इनके साथ ही ये दशहरा, दीवाली और होली भी बड़े मजे से मनाते हैं। होली तो इनका सर्वप्रिय त्यौहार है। होली के अवसर पर ही इनका सबसे प्रसिद्ध पर्व भगोरिया आता है। होली के पहले आठ दिनों में लगने वाले हाट ही भगोरिया का रूप ले लेते हैं, जिनमें भीली युवक-युवती गुलाल लगाते हैं और विवाह बंधन में बंधने के लिए जंगल अथवा किसी रिश्तेदार के यहाँ भाग जाते हैं, इसीलिए इस पर्व को भगोरिया कहा जाता है। यही कारण है कि भगोरिया भील युवक-युवतियों के मिलन-मेले बन जाते हैं।

झाबुआ के निकट एक 'भगोर' ग्राम है, यही 'भगोर' अतीत में कभी झाबुआ की राजधानी थी। कहते हैं- भगोरिया हाट और पर्व की शुरुआत इसी 'भगोर' गाँव से हुई है। इसलिए भी इस पर्व का नाम भगोरिया पड़ा। भगोरिया हाट केवल मिलन मेले ही नहीं हैं, बल्कि यह एक नृत्य-पर्व भी है। आसपास के प्रत्येक गाँव से सजे-धजे युवक-युवतियों के दल के दल मांदल की थाप पर नाचते-गाते भगोरिया हाट पर्व में शामिल होते हैं। इसीलिए

छाया : रवि श्रीवास

भील महिला

छाया : संजय कुमार

भील पुरुष

भीलों के इस नृत्य का नाम भगोरिया नृत्य पड़ा। भगोरिया नृत्य में शामिल जवान-बूढ़े और बच्चों का आदिम उमंग उल्लास देखने लायक होता है।

भीलों का भगोरिया मेला और नृत्य देखने के लिए देश-विदेश से लोग खिंचे चले आते हैं। भगोरिया में भील-भिलाला, बारेला पटलिया सभी उत्साह से हिस्सा लेते हैं। ढोल-मांदल की थाप और थाली की अनुगूंज पर भगोरिया नृत्य संचालित होता है। रंग-बिरंगी वेशभूषा में सजी-धजी युवतियाँ हाथ में रूमाल तथा तीर धनुष और फालिया लिए युवकों को लय गति के साथ नाचना भीलों के शौर्य और श्रृंगार का दिग्दर्शन कराता है। भगोरिया नृत्य की विभिन्न मुद्राएँ और थिरकते पैरों का संचलन भगोरिया नृत्य को एक अद्‌भुत गति और आकर्षण से भर देता है। चक्री पाली, गोल पाली आदि विशेष पारम्परिक नृत्य संरचनाएँ भगोरिया नृत्य को और उन्मुक्त बनाती हैं। बीच-बीच में युवकों की 'हुंकार' और 'कुर्राटी' नृत्य को अत्यधिक उत्तेजक बनाने में सक्षम होती है। तब ऐसा लगता है जैसे 'फागुन' में कोई आदिम समूह युद्ध की विजय का उल्लास मना रहा हो। अलिराजपुर के सोंडवा, बालपुर, उमराली आदि के भगोरिया हाट पर्व सारे देश और विश्व में प्रसिद्ध हैं।

छाया : घनश्याम शर्मा

भील-भिलाला अत्यन्त रंगप्रिय जनजाति है। रंग-बिरंगे चटकदार वस्त्र पहनना भीलों की पहली पसंद है। चाँदी और गिलट के गहने पहनना भी भील-भिलाला स्त्री-पुरुषों का पहला शौक है। भीली स्त्रियाँ सर्वाधिक श्रृंगारप्रिय भी हैं। भीली स्त्रियाँ ही नहीं भील पुरुष भी श्रृंगार करने में पीछे नहीं होते हैं। भगोरिया में जाने वाले युवक सबसे अधिक सजते-सँवरते हैं क्योंकि उनका लड़कियों को रिझाना भी एक मकसद होता है। आँखों में सुरमा, सिर पर रंगीन फेटा या चाकदार पगड़ी, कानों में चाँदी की लटकन, हाथों में कड़े और कमर में कंदौरा और कमीज में सट बटन लगाना भील युवकों के श्रृंगार का अनिवार्य अंग हैं।

भीली महिलाएँ प्रायः वस्त्राभूषणों से लगभग लदी होती हैं। घेरदार लहँगा और चूंदड़ी उनका खास पहनावा है। ये अधिकतर छपे वस्त्र पहनती हैं। भीली युवतियाँ पान खाती हैं और ओठों पर लाली लगाती हैं। शरीर पर गुदने गुदवाती हैं।

भीली स्त्रियाँ गले में अनेक प्रकार की गलसनियाँ यानी कलात्मक मोती मालाएँ स्वयं गूँथकर पहनती हैं। माथे में बोर झेला, गले में तागली, हार, सांकली, हाथों में डालकड़े, पैरों में कड़ियाँ, कमर में कंदोरा पहनना प्रत्येक भीली महिलाएँ पसंद करती हैं।

भील अपनी शारीरिक बनावट के कारण अलग से पहचाने जाते हैं। भीलों का कद सामान्य औसत ऊँचाई का होता है। रंग काला, नाक मोटी चपटी होती है। शरीर मजबूत होता है।

भिलाला, राजपूत से उत्पन्न हैं, इसलिए इनकी कद-काठी और रंग राजपूतों जैसा होता है। भिलाला स्त्री का रंग प्रायः गोरा, शारीरिक बनावट अत्यंत संतुलित और सुंदर होती है। भिलाल उन्नत और समृद्ध किसान होते हैं। बारेला, पटलिया और राठिया भीलों के ही वर्ण संकर हैं। नायक, धानुक, मानकर और तड़वी भी भीलों के उपांग माने जाते हैं।

सौजन्य : वसन्त निरगुणे

भीली पिथौरा भित्तिचित्र

छाया : राजू

हाट-बाजार

भीलों का मुख्य भोजन मक्का है। इसलिए ये अपने खेतों में मक्का की फसल लेते हैं। वर्षा भी कम होने के कारण खेतों में प्रायः मोटे अनाजों की ही फसल होती है। भील वनोपज भी संग्रहीत कर हाट-बाजारों में बेचते हैं। महुआ की दारू और ताड़वृक्ष से उतारी गई ताड़ी भीलों के प्रिय पेय हैं।

भीलों के कई देवी-देवता हैं, जिनकी पर्व-त्यौहारों और अवसर विशेष पर पूजा करते हैं। उन्हें भेंट चढ़ाते हैं और अनुष्ठान करते हैं। भीलों का अपना एक देवलोक है, जिस पर उनकी अटूट श्रद्धा है। भीलों के सबसे बड़े देवता महादेव हैं, जिनकी प्रतिष्ठा आदिम और लोकदेवता दोनों रूप में है। बापदेव, खूंट देव, बगासा देव, भीलट देव, कसूमर देव, बेलूनदेव, खालून देव, भेरूदेव, भैस्यादेव, मालिया बबा, पिठौरा बाबा, खेतर वाल, बाघदेव आदि भीलों के स्थानीय देवता हैं। भील माता, काली माता, चामुण्डा माता, हरवण माता, सात माताएँ आदि मातृशक्ति देवियाँ हैं, जिनकी भील जन वर्षभर पूजा करते हैं।

भील कभी अश्व पालक और अश्व पूजक रहे हैं। इसी कारण उनमें बापदेव को मिट्टी के घोड़े चढ़ाने की प्रथा है और पिठौरदेव के भित्ति चित्रांकन में भी सबसे अधिक घोड़ों का अंकन मिलता है। पिठौरा बापजी के साथ काजलराणी आदि देवी-देवताओं की लम्बी-लम्बी गाथाएँ गाते हैं। उनमें भी घोड़ों का अद्‌भुत वर्णन मिलता है।

भीलों की कला परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। घर बनाने से लगाकर कृषि कार्य में लगने वाली सारी सामग्रियों का निर्माण सदियों से भील-भिलाला जन अपने हाथों से करते आये हैं। मकान बनाने की वास्तुकला स्वयं भील लोगों ने अपने प्राकृतिक उपलब्ध संसाधनों से विकसित की है। लकड़ी का सारा काम खुद भील जन करते हैं जिसमें कलात्मक दरवाजों से लगाकर घट्‌टी का थाला और दिवाण्या यानी दिया रखने का लकड़ी का उद्रेखणयुक्त स्टेण्ड शामिल है।

पिठौरा भीलों की चित्र परम्परा का सबसे सुन्दर उदाहरण है। भील समाज प्रकृति के अस्तित्व में विश्वास करता है। पेड़-पौधों आदि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में एक सजीवता है, मनुष्य की तरह जीवन्तता है। इसलिए भीलजन हर वस्तु में किसी न किसी शक्ति अथवा देवता का वास मानते हैं, जिससे सारी सृष्टि और जीवन संचालित होता है। भीलजन उसी शक्ति की पूजा का उपक्रम करते हैं, जिसे 'पिठौरा' बापदेव कहते हैं। दिवाल पर वर्ष में एक बार चित्र बनाकर उसका अनुष्ठानपूर्वक समारोह करते हैं, जिसमें पूरा समाज इकट्‌ठा होता है। पिठौरा पूजन देवी-देवताओं के आव्हान और पूजा का सबसे पवित्र अवसर होता है। पिठौरा पर्व एक आदिम अनुष्ठान है। आदिम आस्था की अपूर्व गाथा है जिसे भीलों के चित्रों की परम्परा का चरम उत्कर्ष कहा जाता है, जिसमें चित्र और शब्द की अनुपम युति है वह भीली चेतना का सबसे उजला चित्रित पवित्र पृष्ठ है और है आदिम गाथाओं को जगाने का सबसे पावन अवसर। जहाँ पिठौरा के घोड़े उड़ते हैं, बातें करते हैं, धरती से स्वर्ग तक जाते हैं। देवी-देवताओं को धरती पर लाते हैं। ढाँक पर बड़वे पिथौरा बापजी और काजलराणी की गाथा गाते हैं। काजलराणी

छाया : संजय कुमार

भीली युवक

सबका कल्याण करती है। ढाँक की गूँजती रहस्यमयी ध्वनि जैसे आत्माओं से संवाद करती है। प्रार्थना जैसे करुणा में बदल जाती है।

गाता या गातला भीलों के मृतक की स्मृति में लगाये जाते हैं। ये पत्थर, काष्ठ और मिट्टी के फलक होते हैं जो मृतक की स्मृति गाथा होती है, जिसमें उसकी प्रतीकात्मक मूर्ति, चाँद-सूरज और जीवन की गतिविधियाँ उकेरी जाती हैं। ये स्तंभ मृतक की स्मृति को चिरस्थायी बनाने का उपक्रम होता है। मृतक स्तंभ व्यक्ति की असामान्य स्थिति में मृत्यु होने पर ही लगाये जाते हैं। अनेक जनजातियों में इसी तरह मृतक स्तंभ लगाने की प्रथा है जो एक कला का श्रेष्ठतम नमूना भी होता है और पूर्वज की यादगार स्मृति भी। आदिवासियों की इस परम्परा ने न केवल मृतक के प्रति

सौजन्य : वसन्त निरगुणे

भीली बापजी देव

छाया : संजय कुमार

सौजन्य : वसन्त निरगुणे

कोरकू देव वृक्ष पूजा

श्रद्धा की निरन्तरता को बनाये रखा है, बल्कि एक कलारूप की भी स्थापना कर दी है।

भीली महिलाएँ अपने घर की दीवारों, दरवाजों के आसमान चित्रण करने में विश्वास रखती हैं। ये हरे, पीले, नीले, लाल, मिट्टी रंगों से घर की दीवारें अलंकृत करती हैं। धरती को आटे और रंगोली चूर्ण से तरह-तरह के मांडणों से सजाती हैं। लिखन्दरा पिठौरा का चित्र लिखता है। महिलाएँ द्वार के इर्द-गिर्द सूर्य चन्द्र, बेलबूटे, पशु-पक्षियों की आकृतियाँ उकेरती हैं। घर आँगन-दीवारों को कलात्मक रूप से लीपना, पोतना और उन पर मिट्टी से उद्रेखण करना आदि भीलों की कला परम्परा को दर्शाता है। भीली स्त्रियों की कला चेतना का आभास उनके दैनन्दिनी वस्त्रों, थैली, चोमल, बटुए, गलसन आदि में सहज रूप से देखा जा सकता है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भीलों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। यहाँ की ऊबड़-खाबड़ जमीन कम उपजाऊ है। वर्षा भी कम होती है। अवर्षा के कारण फसलें अच्छी नहीं होतीं। यही कारण है कि भील किसान आर्थिक रूप से पिछड़ता जा रहा है। उदरपूर्ति के लिए उसे अपने जंगल गाँव से निकलकर शहरों में मजदूरी करने के लिए मजबूरी में निकलना पड़ता है। शहरों में आये दिन सिर पर बोझ लिए पंक्तिबद्ध चलते हुए भील परिवार हमें अक्सर देखने को मिल जाते हैं।

फिर भी आजकल भील-भिलाला, बारेला, पटलिया पढ़ने-लिखने में रुचि ले रहे हैं। नौकरी-धन्धों में तेजी से आ रहे हैं। खेती में उन्नत साधनों का उपयोग कर रहे हैं। अच्छी फसलें ले रहे हैं। इससे उनका सामाजिक और आर्थिक स्तर सुधर रहा है। यह एक सुखद स्थिति है। भील जन सरकारी योजनाओं से भी लाभान्वित हो रहे हैं। आज भील जनजाति अपनी परम्पराओं को निभाते हुए आधुनिक समय के साथ चलने की पूरी कोशिश कर रही है। एक आदिम जाति एक ही समय में आज कई संस्कृति समय में उसी ऊर्जा के साथ जी रही है, यह भील जनजाति के लिए कम विश्वास की बात नहीं है।

(लेखक जनजातीय विषयों के विशेषज्ञ हैं।)